**ओ३म्**

**“भोजन करते समय यह ध्यान रहे कि हम जो पदार्थ खा रहे हैं, क्या वह परमात्मा ने खाने के लिए ही बनाये हैं?”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 आजकल मनुष्य अपने घरों व होटलों आदि में जो भोजन करते हैं वह या तो उन्हें माता-पिता द्वारा दिये संस्कारों के अनुसार होता है या फिर वह दूसरे लोगों से संगति के कारण भी ऐसा करते हैं। भोजन करते समय शायद ही कोई मनुष्य विचार करता हो कि वह जो भोजन कर रहा है क्या वह भक्ष्य है अर्थात् खाने योग्य है अथवा नहीं? आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के दशम् समुल्लास में भोजन के भक्ष्य एवं अभक्ष्य के प्रश्न को प्रस्तुत कर उसका समाधान किया है। भक्ष्य वह भोजन होता है जो पुरुषार्थ से अर्जित किया जाये एवं साथ में उससे किसी प्राणी व प्राणियों को कष्ट न हुआ हो। भोजन में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वह हमारी प्रकृति के अनुकूल एवं स्वास्थ्यवर्धक हो न कि हानिकारक। आजकल की युवापीढ़ी व अन्य आयुवर्ग के लोगों में भी बाजारी सामिष भोजन व फास्ट फूड आदि खाने की वस्तुओं का प्रयोग करने का एक प्रकार से फैंशन हो गया है। वह ऐसा भोजन होता है जो खाने योग्य होता ही नहीं है। इसे विडम्बना ही कह सकते हैं। आजकल सभी प्रकार की जागरूकता बढ़ने पर भी भोजन के प्रति हम लोग दूसरों का अन्धानुकरण करने के साथ जिह्वा के स्वाद को मुख्य स्थान दे रहे हैं जो कि भावी जीवन में हम सब के लिए रोग का कारण बनने के साथ अल्पायु में मृत्यु का कारण बन सकता है।

 आजकल प्रायः सभी मतों के लोग सामिष भोजन करते हैं। सामिष भोजन में नाना प्रकार के पशुओं बकरी, भेड़, मुर्गी-मुर्गा, मछली, कबूतर आदि को मार कर उनके मांस से बनायें गये अनेक नामों के व्यंजन वा पदार्थ, अण्डे, मदिरा आदि पदार्थ सम्मिलित हैं। कुछ धर्म विशेष के लोग गाय, भैंस, सांड आदि पशुओं का मांस भी खाते हैं। केवल आर्यसमाज के अनुयायी शतप्रतिशत न सही परन्तु 95-99 प्रतिशत तो शुद्ध शाकाहारी होते ही हैं। यदि कोई मांस व सामिष पदार्थ का सेवन करता भी है तो वह छुप कर करता है। हमें आर्यसमाज में कभी कोई ऐसा सदस्य व अनुयायी नहीं मिला जो कहे कि वह किसी भी प्रकार का मांस, मछली, अण्डे सहित मदिरा पान करता है। इस दृष्टि से भी आर्यसमाज संसार की एक अदभुद् व यूनिक संस्था है। भोजन विषयक सही व उचित विचार रखने वाली यह संस्था संसार की सर्वश्रेष्ठ व सर्वोत्तम संस्था है। सभी संस्थाओं व मनुष्यों को आर्यसमाज के अनुयायियों का भोजन की दृष्टि से तो अनुकरण करना ही चाहिये। इससे उन्हें अनेक प्रकार के लाभ होंगे। वह बलिष्ठ होने सहित रोगमुक्त होंगे और अल्पायु न होकर दीर्घायु होंगे। एक कहावत है कि मनुष्य जैसा अन्न खाता है वैसा ही उसका मन होता है। मनुष्य का मन ही उसके बन्धन, दुःखों व दुःखों से मुक्ति का कारण भी होता है। इसका कारण यह है कि सामिष भोजन करने वाले मनुष्यों का मन हिंसा व पाप में अधिक प्रवृत्त होता है। सात्विक भोजन करने वाले अध्यात्म मार्ग में चलकर अधिक सिद्धियां पाते हैं व उनके कर्म भी अन्यों की दृष्टि से श्रेष्ठ व आदर्श प्रकृति के होते हैं। हमने संसार के अनेक महापुरुषों के जीवनों का अध्ययन किया है और अनेकों के बारे में सुना भी है। इनकी तुलना करने पर हमें स्वामी दयानन्द जी का जीवन सर्वश्रेष्ठ व आदर्श जीवन अनुभव होता है। उनका भोजन शुद्ध था, उनका ज्ञान व विद्या शुद्ध थी, उनके कर्म व व्यवहार श्रेष्ठ व शुद्ध थे, वह सच्चे ईश्वरभक्त, वेदभक्त, देशभक्त और गोभक्त आदि गुणों से पूर्ण थे। पूर्ण शुद्ध व पवित्र भोजन का उनके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। उनका चरित्र भी उत्तम व आदर्श था। यदि उनका भोजन श्रेष्ठ व शुद्ध न होता तो वह जीवन में, अध्यात्मिक, सामाजिक एवं शारीरिक उन्नति के क्षेत्र में उतने उन्नत व सफल न होते जो वह वस्तुतः थे। शुद्ध भोजन करने सहित सच्चे ज्ञानी विद्वानों की खोज व उनकी संगति, उनसे विद्या का ग्रहण व उसका जीवन में आचरण आदि उनके महत्वपूर्ण गुण थे। उसके जीवन के आदर्शों का लाभ देश को मिला और उन्होंने उनकी शिक्षाओं से लाभ उठाकर देश को अवनति के गढढ़े से निकाल कर उन्नति के शिखर पर पहुंचाया है। आज समाज में जिन सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार किया गया है, अपने जीवनकाल 1825-1883 में उन सबका पोषण स्वामी दयानन्द जी ने किया था और समाज को वैसा करने की प्रेरणा की थी।

 हम जो भोजन करते हैं, उसका निर्धारण करते हुए हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वह पदार्थ परमात्मा ने किस उद्देश्य व निमित्त की पूर्ति के लिए बनाये हैं। वृक्ष परमात्मा ने शुद्ध वायु देने के लिए बनाये हैं। अतः यदि कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए वृक्षों को काटता व उनका नाश करता है और उसी मात्रा व उससे अधिक वृक्ष नहीं लगाता व उनका पोषण नहीं करता तो यह कार्य पुण्य व शुभ न होकर पाप व अशुभ कार्य होता है। वायु, जी व सृष्टि में प्रदुषण करना भी पाप कर्म ही है। उनका यज्ञ आदि से निवारण करना भी उन्हीं मनुष्य का कर्तव्य है। यही बात अन्य वनस्पतियों व अन्न आदि पदार्थों पर भी लागू होती है। अन्न व वनस्पतियों को काटने व उनका सेवन करने से किसी चेतन व सजीव प्राणी को वैसा कष्ट नहीं होता जैसा कि गाय, भैंस, बकरी, भेड़, मछली, मुर्गा-मुर्गी आदि को मार कर उनके मांस को पकाने से उन प्राणियों को होता है। इन अन्न, फल व दुग्ध आदि पदार्थों को बनाने का अन्य कोई उद्देश्य भी दृष्टिगोचर नहीं होता। इनकी प्राप्ति के लिए मनुष्यों को पुरुषार्थ भी करना होता है जिससे वह इनके सेवन का अधिकारी बनते हैं। इसी कारण सृष्टि के आदि ग्रन्थ मनुस्मृति में भी मांसाहार करने वाले मनुष्यों सहित पशु को काटने की अनुमति देने वाले, काटने वाले, मांस पकाने वाले, परोसने वाले तथा खाने वाले सभी को पापी माना गया है। मांस खाने वाले लोग एक बार भी यह विचार नहीं करते कि उनके स्वाद के कारण किसी चेतन प्राणी की हत्या होती है, उसे वैसी पीड़ा होती है जो हमें हमारी हत्या होने पर हो सकती है तथा वह पशु अकारण मृत्यु के दुःख को प्राप्त होता है। कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता। मनुष्य अनेक दुःखों के होने पर भी चाहता है कि वह जैसे तैसे जीवित रहे। मृत्यु की अपेक्षा अन्य दुःख उसे सह्य लगते हैं। अतः किसी पशु की बिना किसी दोष के अकारण हत्या करना महापाप है व उनका मांस खाना तो हर स्थिति में महापाप ही है। एक अन्य दृष्टि से भी यह गलत है। परमात्मा ने प्राणियों को उनकी आत्मा के पूर्व जन्मों में शुभ व अशुभ कर्मों के कारण से पशु बनाया है। उनके जीवन का उद्देश्य अपने पूर्व जन्मों के कर्मों के फल भोगना है। ईश्वर उनको वह भोग प्रदान करता है और सभी पशु ईश्वर की व्यवस्था से अपनी अपनी योनियों में अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। मांसाहारी मनुष्यों के लिए व उनके कारण इन पशुओं को ईश्वर द्वारा निर्धारित अवधि से पूर्व ही मार दिया जाता है। ऐसे सभी लोगों से ईश्वर नाराज होता है और वह दण्डनीय होते हैं। स्वभाविक है उनका अगला जन्म इस जन्म के कर्मों के भोग को लेकर निर्धारित होगा। इस स्थिति में मांसाहारियों के पाप कर्मों के कारण वह मनुष्य बनते होंगे, हमें विश्वास नहीं होता। हमें तो अनुमान से लगता है कि वह पशुओं से भी बदतर व नीच योनियों में जन्म लेते होंगे और परवर्ती जीवन में उस पीड़ा का भी उन्हें अवश्य अनुभव होता है जो समय समय पर मनुष्य जीवन में उन्होंने अन्य प्राणियों को दी हैं। अतः ऐसा विचार कर सज्जन प्रकृति के लोगों को मांसाहार तत्काल बन्द कर देना चाहिये। यदि वह नहीं सोचते और कुएं में गिरना ही चाहते हैं, तो उन्हें कौन रोक सकता है?

 भोजन करने का सिद्धान्त है कि भोजन वनस्पतियों, अन्न, फल, गोदुग्ध आदि व बादाम, काजू आदि मेवों से युक्त होना चाहिये और इसकी अल्प व आवश्यक मात्रा भोजन के लिए निर्धारित समय पर ही लेनी चाहिये। चाय व काफी का सेवन भी स्वास्थ्य को लाभ नहीं अपितु हानि ही पहुंचाता है। इसका सेवन नहीं करना चाहिये। ऐसा जीवन बनाने से अवश्य लाभ होगा। भोजन शुद्ध व पवित्र होना चाहिये। इसके लिए उनके आय के स्रोत भी शुद्ध व पवित्र होने चाहिये। वह पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करते हों। पक्षपात व अन्याय न करते हों। ईश्वर व वेदभक्त हों, ऋषियों के भक्त हों, सदाचारी हों तथा दानी व परोपकारी भी होने चाहियें। ऐसा जीवन ही श्रेष्ठ जीवन होता है। हम आशा करते हैं कि सभी मनुष्य भोजन के विषय में समय समय पर अवश्य विचार करेंगे कि वह जो भोजन करते हैं वह ईश्वर व ऋषि आप्त विद्वानों की दृष्टि में भी भक्ष्य है या नहीं। ईश्वर के उन पदार्थों को बनाने के प्रयोजन पर भी विचार करना चाहिये। उससे विपरीत उनका उपयेग नहीं करना चाहिये। उनके भोजन से किसी निर्दोष प्राणी को कदापि कष्ट नहीं होना चाहिये। ईश्वर की व्यवस्था भी भंग नहीं होनी चाहिये। भोजन शास्त्रीय दृष्टि से भी ग्राह्य होना चाहिये। इसी के साथ इस चर्चा को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**